# इकाई–1 : रीतिकालीन काव्य साहित्य

**संरचना**


1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 रीतिकाल
  1.2.1 रीतिकाल का नामकरण और उसका औचित्य
  1.2.2 रीतिकाल का सीमा निर्धारण
  1.2.3 रीतिकाल –प्रमुख प्रवर्तक –केशव, चिन्तामणि
1.3 रीतिकालीन प्रेरक परिस्थितियाँ
  1.3.1 राजनीतिक
  1.3.2 सामाजिक
  1.3.3 सांस्कृतिक
  1.3.4 साहित्य और कला की स्थिति
1.4 रीतिकालीन कविगणों की काव्यधाराएं
  1.4.1 रीतिबद्ध
  1.4.2 रीतिमुक्त
  1.4.3 रीतिसिद्ध
1.5 रीतिकालीन प्रवृत्तिगत विश्लेषण
  1.5.1 श्रृंगाररस की प्रधानता
  1.5.2 आचार्यत्व प्रदर्शन
  1.5.3 प्रेम की प्रधानता
  1.5.4 भक्ति और नीति की धारणा
  1.5.5 भावना प्रधानता प्रेम का पक्ष
  1.5.6 अलंकरण के प्रति पक्ष
  1.5.7 प्रकृति निरूपण संयोग वियोग पक्ष
  1.5.8 नारी चित्रण
  1.5.9 शिल्प सौन्दर्य
  1.5.10 कृत्रिम व्यापारों का परित्याग
  1.5.11 अनुभूति और रस
  1.5.12 काव्यरूप
  1.5.13 वीर रस एवं हास्य रसात्मक रचनाएं
  1.5.14 बिम्बात्मकता
  1.5.15 ब्रज की प्रधानता
1.6 रीतिधारा की प्रमुख विशेषताएँ
  1.6.1 रीतिबद्ध काव्यधारा
    1.6.1.1 आचार्यत्व के प्रति आकर्षण
    1.6.1.2 श्रृंगार को महत्व
    1.6.1.3 नारी के दैहिक सौन्दर्य की अधिकता
    1.6.1.4 कवित्व शक्ति की अवहेलना
    1.6.1.5 मौलिक चिन्तन का अभाव
    1.6.1.6 प्रकृति वर्णन
    1.6.1.7 आश्रयदाता की प्रशंसा
    1.6.1.8 नीति और भक्ति
    1.6.1.9 विभिन्न शैलियों का प्रयोग


Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

1.6.2 रीतिसिद्ध कवियों की विशेषताएँ
1.6.3 रीतिमुक्त काव्यधारा
1.6.3.1 परम्परामुक्त मार्ग का अनुसरण
1.6.3.2 व्यक्तिप्रधान काव्य
1.6.3.3 वेदनायुक्त प्रेम दर्शन
1.6.3.4 प्राचीन काव्य परम्पराओं का परित्याग
1.6.3.5 भावात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति
1.6.3.6 सहज–निश्छत्र भाषा का प्रयोग
1.7 निष्कर्ष

## 1.0 प्रस्तावना

"प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ के जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, अतः यह निश्चित है कि चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है। आदि से अन्त तक इन्हीं चित्तवृत्तियों की परम्परा को परखते हुए साहित्य परम्परा के साथ उनका सामंजस्य दिखाना ही साहित्य का इतिहास कहलाता है।" (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल–हिन्दी साहित्य का इतिहास) जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनैतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुसार होती है। इस कारण स्वरूप इन परिस्थितियों का दिग्दर्शन भी साथ साथ आवश्यक होता है। इस दृष्टि से रीतिकाल का पूर्ण विवेचन करने में यह बात अवश्य ध्यान में रखनी होगी कि किस विशेष समय में लोगों में किस रुचि विशेष का संचार होने लगा।

हिन्दी काव्य अब पूर्ण प्रौढ़ता पर पहुँच चुका था। संवत् 1348 में कृपाराम ने रस निरूपण किया। उसी समय के लगभग चरखारी के मोहनलाल मिश्र ने 'श्रृंगार सागर' नामक एक ग्रन्थ श्रृंगार के सम्बन्ध में लिखा। नरहरि कवि के साथी कवि करसेन ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूपभूषण' नामक तीन ग्रन्थ अलंकार सम्बन्धी लिखे रसनिरूपण और अलंकार निरूपण हो जाने पर केशव ने काव्य के सभी अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक् समावेश सर्वप्रथम आचार्य केशव ने ही किया था। किन्तु हिन्दी में रीति ग्रन्थों की अविरल और अखण्डित परम्परा का प्रवाह केशव की 'कविप्रिया' के प्रायः पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श को लेकर, केशव के आदर्श को लेकर नहीं।

हिन्दी रीति ग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली। अतः रीतिकाल का आरम्भ उन्हीं से माना जाना चाहिये। उन्होंने संवत् 1700 के आस–पास 'काव्य विवेक', 'कविकुलकल्पतरु' और 'काव्यप्रकाश' तीन ग्रन्थ लिखकर काव्य के सभी अंगों का सुन्दर निरूपण किया।

जब परिस्थितियाँ बदलती हैं तो मानव की मनोदशा भी स्वतः ही परिवर्तित होने लग जाती है, परिणामस्वरूप साहित्य भी उसी परिवर्तित सोच के अनुसार नई राह पकड़ लेता है। भक्ति के पश्चात् विकसित श्रृंगार भाव से पुष्ट रीति साहित्य इसी नियम से सामने आया है। इस साहित्य को पढ़कर स्पष्ट होता है कि इस काल के कवि सच्चे अर्थों में यौवन और जीवन के भौतिक पक्ष के कवि थे। अपने समय से प्रेरित और पुष्ट होकर रीति साहित्य पाण्डित्य–प्रदर्शन और कवि–कर्म साथ–साथ निभाता रहा है। ..... रीतिबद्ध और रीति मुक्त दोनों वर्गों के कवियों का धरातल अलग–अलग रहा है। रीतिबद्ध कवियों ने शास्त्रीय परम्परा को आधार मानकर काव्य–रचना की तो रीति मुक्त कवि स्वनिर्गित स्वच्छन्द मार्ग पर चले। रीतिबद्धता में कविता प्रयत्नज और आचार्यत्व के रंग में रंगी हुई लगती है तो रीतिमुक्त होकर वह सहज, स्वतःस्फूर्त और हृदय से फूटी हुई लगती है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य काल को 'रीतिकाल' माना है और इसकी अवधि संवत् 1700 वि. से सं. 1900 वि. तक स्वीकार की है, कुछ विद्वान इस अवधि को 'श्रृंगार काल' कहते हैं। किन्तु आचार्य रामचन्द्र ने प्रवृत्तिगत आधार पर उपरोक्त नाम दिया है।

निःसंदेह रीतिकाल के कवि अत्यधिक प्रतिभा सम्पन्न एवं कलम की शक्ति के मालिक थे। उनमें अपरिमित रचना सामर्थ्य या भावों की गहराई और सूक्ष्मता की कमी नहीं थी। शब्द की क्षमता व अर्थ की गुरुता को वे अच्छी प्रकार से समझते थे। उनको शब्द गुणों की प्रकृति की पहचान थी। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस बात को माना

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कि प्रतिभाएँ दो प्रकार की होती हैं– कारयित्री एवं भावयित्री। कवि में कारयित्री प्रतिभा होती है, उसी के बल पर वह नवीन उद्भावनाओं को प्रस्तुत करता है। भावयित्री भावना समीक्षक में होती है, जिसके बल पर वह काव्य की अन्तः प्रकृति का विश्लेषण और प्रमुख विशेषताओं का उद्घाटन करता है। किसी भी काव्य शास्त्र आचार्य में भावयित्री प्रतिभा होनी चाहिये। दोनों प्रतिभाओं का सहज मणि–कांचन संयोग तो कभी किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त हो सकता है किन्तु दोनों में से एक को अपने गुण व स्वभाव के आधार पर कोई भी व्यक्ति विकसित कर सकता है। हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन रचनाकारों ने कारयित्री प्रतिभा के बल पर कवि भी बनना चाहा और भावयित्री प्रतिभा विकसित करके आचार्य भी। इसी प्रपंच के कारण उनका कवि पक्ष कमजोर प्रमाणित हुआ और आचार्य पक्ष भी।

हिन्दी के रीतिकालीन रचनाकारों को दोहरी भूमिका निभानी पड़ती थी। वे लक्षण भी अपनी ओर से प्रस्तुत करते और उनके उदाहरण के रूप में कविता भी स्वयं लिखते थे जो उनके लिये एक बहुत बड़ी जिम्मेदारी का काम था। जिसे उन्होंने बखूबी निभाया और निभाने का भरसक प्रयास किया था फिर भी उसमें कुछ कमी रह गई तो इसमें उनका दोष नहीं था। वैसे उक्त कार्य से उन्होंने अपनी कमियों को नहीं दर्शाया। बल्कि साहस का परिचय दिया और बड़ी कुशलता के साथ उनके उदाहरणों में काव्य शक्ति का प्रदर्शन किया गया था।

वैसे संस्कृत रीतिकाव्य के प्रभाव से ही हिन्दी रीति काव्य का आविर्भाव हुआ। साहित्य के इतिहासकारों ने हिन्दी के प्रथम रचनाकार के रूप में पुष्पदन्त या पुष्यदन्त का नामोल्लेख किया इससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी में भी रीति ग्रन्थ लेखन की प्रवृत्ति उतनी ही पुरानी है जितनी कि संस्कृत साहित्य की। आदिकाल के संधिकाल में कवि विद्यापति ने भी लक्षण–ग्रन्थ लिखे। भक्तिकाल में कवि अब्दुल रहीम खानखाना जो संत तुलसीदास के परम मित्र थे। उन्होंने तुलसी की भक्ति धारा के प्रवाह से 'बरवै नायिका भेद' नामक लक्षण ग्रन्थ लिखा।

रीतिकाल की काव्यशास्त्रीय लक्षण ग्रन्थ लिखने का श्रीगणेश काफी पहले से हो चुका था और इसकी समाप्ति भी 1900 वि. में ही नहीं हो गई थी इसके बाद भी रीति ग्रन्थ लिखे जाते रहे।

आचार्य बलदेव उपाध्याय, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, आचार्य विश्वेश्वर, डॉ. नगेन्द्र, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्याम सुन्दर दास, आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. भोला शंकर व्यास, डॉ. आनन्द प्रकाश दीक्षित, डॉ. ब्रह्मानन्द शर्मा, स्वामी सुरजन दास आदि रचनाकारों ने काव्यशास्त्र के अंगों पर आधुनिक शैली में अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। अतः हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि रीतिकाल की सीमावधि के बाद रीति ग्रन्थ लेखन की प्रवृत्ति समाप्त हो गई थी। सोचने–समझने के ढंग बदलते हैं तो व्याख्या की शैली बदल जाती है और तुलनात्मक पद्धति का सहारा लिया जाता है और तब तत्त्व निर्धारण की प्रवृत्ति विकसित की गई साथ ही निर्णय देने में वैयक्तिक रुचि को नहीं, तथ्यपरक दृष्टि को आधार बनाया गया।

रीतिकाल प्रवृत्तियों के विषय विचार का तरीका अब वह नहीं है जो प्रारम्भिक साहित्यकारों के द्वारा अपनाया गया। प्राचीन दृष्टि प्राचीन ग्रन्थों में सही थी किन्तु अब वह दृष्टि पुरानी हो गई और उनके आधार पर लिये जाने वाले निष्कर्ष भी यह अपेक्षा करते हैं कि उन पर पुनर्विचार किया जाये। इस संदर्भ में दो तथ्य विचारणीय हैं – सं. 1700 से 1900 वि. की कालावधि का साहित्य भक्तिकाल के साहित्य का उत्तरवर्ती है। इसमें भाषा अत्यन्त संश्लिष्ट होती चली गई। घनानन्द, सेनापति, पद्माकर और जगन्नाथ दास रत्नाकर की भाषा ही भक्तिकाल की भाषा से उत्कृष्ट है। सौन्दर्य और अर्थ गौरव दोनों ही दृष्टियों में विशिष्टता स्पष्ट रूप से पहचानने में आती है। स्वस्थ एवं सामंजस्यवादी दृष्टि को अपनाकर ही रीतिकालीन काव्य का अध्ययन किया जा सकता है। दुराग्रह भरी दृष्टि से इस काव्य को नहीं पढ़ा जा सकता है। शृंगार को रसराज माना जाता है और जीवन के साथ उसका गहरा सम्बन्ध है और प्रवृत्तिगत विस्तार भी अधिक है। शृंगार का स्थायी भाव रति है जो अनेक भावों में जीवन में व्याप्त है। भक्ति, वात्सल्य, मैत्री आदि के मूल में रति भाव विद्यमान है। जब शृंगार की व्यापकता के प्रति अद्येताओं ने उदासीनता बरती तो भक्ति रस, वात्सल्य रस, प्रकृति रस आदि की कल्पनाएँ की जाने लगी। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि उत्तर मध्ययुगीन काव्य को एक स्वस्थ और सम्पूर्ण दृष्टि से अध्ययन का विषय बनाया जाये और उसकी सामाजिकता और रससिक्तता के विषय में अधिक युक्तिसंगत धारणाएँ विकसित की जाये।

Uttarakhand Open University, Haldwani (Deemed University), Uttarakhand

## 1.1 उद्देश्य

यह इकाई रीतिकाव्य से संबंधित है जो मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति है। इसमें रीति काव्य प्रवृत्ति की विशेषता बताते हुये प्रमुख रीतिकवियों का परिचय दिया गया है। तत्पश्चात काव्यशास्त्र आलोचना सम्प्रदायों का परिचय दिया गया है। इसे पढ़ने के बाद आप–

- रीतिकाव्य का समय, परिस्थितियां और नामकरण की जानकारी दे सकेंगे। रीतिकालीन रीतिबद्ध, रीतिमुक्त, रीतिसिद्ध काव्यधाराओं का परिचय और प्रवृत्तियां समझा सकेंगे।
- प्रमुख रीतिकवियों के काव्य से परिचय पाकर उनसे संबंधित रचनाओं की व्याख्या कर सकेंगे।
- रीतिकाव्य और काव्यशास्त्रीय विभिन्न मानदण्डों की आलोचनात्मक व्याख्या कर सकेंगे।
- विक्रमी संवत और इसवी सन का अन्तर समझा सकेंगे।

## 1.2 रीतिकाल

भक्त कवियों ने जन–जीवन से प्रेरणा ग्रहण कर परम्परा से चले आ रहे काव्य रूपों और काव्यादर्शों को ग्रहण कर नवीन मार्ग का सृजन किया। उनका प्रभाव अत्यन्त व्यापक था। कृष्ण–भक्त कवियों ने तो भगवान की प्रेम लीलाओं का वर्णन करते समय लौकिकता का समावेश किया है। नन्ददास ने रसमंजरी में नायिका भेद तक का निरूपण किया है। भक्त कवियों ने रीति कवियों द्वारा गृहीत कृष्ण को रस का पोषक माना है साथ ही संस्कृत ग्रन्थों का आश्रय भी ग्रहण किया है।

हिन्दी साहित्य का रीतिकाल धार्मिक या भक्तिकाल का ह्रास–युग है। धार्मिक आंदोलन की पवित्रता तो सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही समाप्त प्रायः हो गई थी। प्रेम और ऐहिकता पर श्रृंगार के प्राधान्य से वासना को प्रश्रय मिला। राधा और कृष्ण का लीला रूप अब कवित्त और सवैयों में रस, अलंकार और नायक–नायिका रूप में आने लगा। वास्तव में हिन्दी का रीति साहित्य संस्कृत रीति साहित्य, वर्तमान 'सतसई', संस्कृत के भक्ति परक मुक्तकों और शास्त्र की मिली–जुली परम्परा का विकास है। रस, अलंकार, काव्यशास्त्र आदि का प्राधान्य होने के कारण से ही यह रीति काल के नाम से पुकारा जाता है।

इस परिवर्तन के कारण जीवन की तत्कालीन परिस्थिति में पाये जाते हैं। मुगल सम्राट अकबर के बाद जहाँगीर और शाहजहाँ के समय में हिन्दी प्रदेश में चारों ओर सुख, शान्ति और समृद्धि थी, चारों ओर वैभव था। लोगों के पास अपार धन था। युद्ध हिन्दी प्रदेश से काफी दूर रहते थे। उस समय तक मुस्लिम अत्याचार भी प्रायः समाप्त हो चले थे। उन्होंने पूरी तरह से अपने आप को भारत का बना लिया था। अतः ऐसे शान्तिपूर्ण वातावरण में दरबारी जीवन का श्रृंगार पूर्ण हो जाना स्वाभाविक है। उस समय राजा ही सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र बन गये थे और वे ही कला के कद्रदान बन गये थे। साहित्य मनोदशा का मुक्त उद्‌गार है। परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण मानव मनोदशा स्वतः ही परिवर्तित होती रहती है। यही कारण है कि साहित्य भी उसी परिवर्तित मनोदशा के अनुरूप अपना रूप–स्वरूप बना लेता है। इन्हीं परिवर्तित मनोदशाओं के साथ साहित्य परम्परा का सामंजस्य स्थापित करना साहित्य का इतिहास कहलाता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक लम्बी परम्परा है। सुविधा के लिये इस सुदीर्घ परम्परा को विद्वानों ने आदिकाल, मध्यकाल और आधुनिक काल में विभाजित कर दिया है।

पं. रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को 'रीतिकाल' कहा है और इसको संवत् 1700 वि. से संवत् 1900 वि. तक माना जाता है। कुछ विद्वानों ने इस काल को 'श्रृंगार काल' भी कहा है। शुक्लजी ने रीतिकाल नाम प्रवृत्तिगत आधार पर दिया है। संस्कृत सहित्य में सं. 600 वि. से 1700 वि. तक लक्षण ग्रन्थों की रचना हो रही थी। काव्यशास्त्र के वामन, दण्डी, भामह, रुद्रट, कैय्यट, मम्मट, क्षेमेन्द्र, कुन्तक, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों ने अपने काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों की रचना इसी काल में की। हिन्दी साहित्य में काव्य शास्त्र सम्बन्धी लक्षण ग्रन्थ लिखने की परम्परा संस्कृत साहित्य के प्रभाव के कारण ही चली।

### 1.2.1 रीतिकाल का नामकरण

रीति का आधुनिक अर्थ शैली माना जाता है। संस्कृत साहित्य में आचार्य वामन ने रीति को 'काव्य की आत्मा' घोषित किया है। हिन्दी साहित्य का रीतिकाल दो सौ वर्षों की लम्बी अवधि को अपने में समेटे हुए है। इन

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

वर्षों में जो साहित्य रचा गया उसमें जीवन के प्रति भौतिक दृष्टिकोण परिलक्षित होता है। तत्कालीन साहित्य को पढकर स्पष्ट संकेत मिलता है कि इस काल के कवि सच्चे अर्थों में जीवन के भौतिक पक्ष और यौवन के कवि थे।

यह लोक साहित्य का समय भले ही न हो परन्तु भौतिकवादी साहित्य का काल अवश्य था। अपने समय की परिस्थितियों से प्रेरित और पुष्ट होकर रीतिकालीन साहित्य पाण्डित्य प्रदर्शन और कवि कर्म दोनों साथ–साथ निभाता रहा। जिसे हम रीतिकाल कहते हैं उसके संदर्भ में अनेक समस्याएँ हमारे सामने आती हैं। इस काल के नामकरण, सीमा निर्धारण और प्रवर्तन को लेकर भी अनेक मत–मतान्तर प्रचलित हैं। आचार्य शुक्ल ने इस काल को रीतिकाल कहा है तो मिश्र बन्धुओं ने अलंकृत काल। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने इसे श्रृंगार काल कहना उचित समझा। डॉ. रसाल ने उसे कथाकाल कहा। इसी संदर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मत है कि "यहाँ साहित्य को गति देने में अलंकार शास्त्र का ही जोर रहा है जिसे उस काल में रीति, कवित्त–रीति, सुकवि–रीति कहा जाता था, संभवतः इन शब्दों से प्रेरणा पाकर शुक्ल जी ने इस श्रेणी की रचनाओं को रीतिकाव्य कहा है।" इस मत से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य शुक्ल ने इसके नामकरण में बाह्यांग विधान को अपनी दृष्टि में रखा है। संस्कृत काव्य शास्त्र में रीति शब्द काव्यांग विशेष का सूचक रहा है। आचार्य वामन ने 'विशिष्टपदरचनारीतिः' और 'रीतिरात्मा काव्यस्य' कहकर रीति को स्पष्ट करने की चेष्टा की है। हिन्दी आचार्यों ने रीति का प्रयोग कवित्त–रीति, कवि–रीति, काव्यरीति, अलंकार–रीति, रसरीति, मुक्तक–रीति, वर्णन–पंथ और कवि पंथ आदि के लिये किया है। सामान्यतः रीति शब्द काव्य रचना की पद्धति के लिये प्रयुक्त हुआ है।

रीतिकाल के लिये श्रृंगारकाल नाम उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि भले ही इस काल के कवियों की रुचि श्रृंगारिकता की ओर अधिक रही हो तब भी ऐसे कितने ही कवि थे जो इस रस में रुचि नहीं रखते थे। फिर नीति, भक्ति और वीर भावना को आधार मानकर रचना करने वाले कवि भी कम नहीं थे। अतः श्रृंगारकाल में अव्याप्ति दोष है।

### उत्तर मध्यकाल नामकरण का औचित्य

इस काल को कला काल अथवा अलंकार काल कहना भी उचित नहीं होगा क्योंकि इनमें से किसी एक का नाम स्वीकार कर लेने से इस काल का भाव पक्ष छूट जाता है। यह माना जाता है कि उस काल के कवि कला शिल्प के कवि थे, पाण्डित्य प्रदर्शन में पूरी–पूरी रुचि रखते थे, फिर भी यह सत्य है कि जो ऐसे थे, उनका भी काव्य भावोत्कर्ष का अच्छा ही नहीं बल्कि श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है। इस काल को अलंकार काल कहना तो पूरी तरह अनुपयुक्त है। रीतिकाल नामकरण के संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्यकाल में अनेक कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने रीतिपंथ की अवहेलना करते हुए काव्य रचनाएं की हैं। ऐसी स्थिति में रीतिकाल नाम भी चिन्तनीय हो जाता है। वास्तविकता यह है कि काव्य के बहिरंग विधान पर ध्यान देने के साथ–साथ इस काल के रसों में श्रृंगार को प्रमुखता प्राप्त हुई है। श्रृंगार के अतिरिक्त भक्ति, नीति और वीर जैसे भावों की भी पर्याप्त रचनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। अतः श्रृंगारकाल, अलंकारकाल और कलाकाल जैसे नाम तो एकांगी प्रतीत होते हैं ऐसी स्थिति में आचार्य शुक्ल जी द्वारा दिया गया नाम रीतिकाल ही अधिक समीचीन होता है। "रीति" शब्द भले ही व्यापक अर्थ वाला है किन्तु इसमें भक्ति, नीति और वीर भावों का समावेश नहीं हो पाया है। ऐसी स्थिति में जब तक कोई ऐसा शब्द सामने नहीं अये जो सबका द्योतक हो अथवा सभी स्थितियों को अपने में समेट ले तब तक इसे 'उत्तर मध्यकाल कहना' अधिक उपयुक्त होगा। मेरी दृष्टि में यह नाम इसलिये भी अधिक उचित लगता है कि इससे हिन्दी साहित्य के मध्यकाल के पूर्वार्द्ध से इसका अन्तर भी स्पष्ट हो जाता है। पूर्वमध्यकाल में जैसे भक्ति और नीति की प्रधानता रही है, वैसे ही उत्तर मध्यकाल में श्रृंगार, वीर की प्रधानता रही है।

### 1.2.2 रीतिकाल की सीमा का निर्धारण

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने सं. 1700–1900 वि. तक की कालावधि को उत्तर मध्यकाल या रीतिकाल की संज्ञा दी है। इस काल की एक यह समस्या है कि इसकी सीमा का निर्धारण कैसे किया जाये? क्योंकि साहित्य के इतिहास में किसी भी काल विशेष की कोई निश्चित पार्थक्य रेखा खींचकर विशेष प्रकार की प्रवृत्तियों को अलग नहीं किया गया है। अनेक प्रवृत्तियाँ साहित्य में एक साथ चलती रही हैं, इन्हीं में से किसी एक या दो प्रवृत्तियाँ किसी काल विशेष में तीव्र रूप धारण कर लेती है। जब एक प्रवृत्ति प्रधान हो जाती है तब दूसरी स्वतः ही गौण हो जाती है। हिन्दी साहित्य के भक्ति काल में भक्ति भावना प्रमुख थी, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उस समय

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शृंगार की प्रवृत्ति थी ही नहीं। यदि ध्यान से देखा जाये तो भक्तिकाल में भी शृंगारिकता खुलकर सामने आई थी। अनेक कवि राधा और कृष्ण के माध्यम से शृंगार के विलासितापूर्ण सरस और उत्तेजक चित्र प्रस्तुत करने लगे यह स्थिति रीतिकाल के लिये प्रेरक बिन्दु बनकर सामने आई है।

### 1.2.3 रीतिकाल : प्रमुख प्रवर्तक

इस संदर्भ में दो प्रकार के मत प्रचलित हैं– विद्वानों का एक वर्ग रीतिकाल का प्रवर्तक आचार्य केशव को मानता है और दूसरा आचार्य चिन्तामणि को। आचार्य शुल्ल ने केशव को श्रेष्ठ आचार्य तो माना है, किन्तु प्रवर्तक नहीं माना है। उन्होंने शृंगारकाल के मुख्य प्रवर्तक का ताज आचार्य चिन्तामणि को पहनाया है। उनका इस संदर्भ में कथन है कि 'हिन्दी में रीति–ग्रन्थों की अविरल और अखण्डित परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के पचास वर्ष पीछे चला और वह भी एक भिन्न आदर्श लेकर, केशव का आदर्श लेकर नहीं। ..... हिन्दी रीति ग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली। अतः रीति काव्य परम्परा का आरम्भ इन्हीं से मानना चाहिये। आचार्य केशव को शृंगारकाल का प्रवर्तक न मानने के पक्ष में आचार्य शुक्ल ने तीन कारण प्रस्तुत किये हैं– रीति की अखण्ड परम्परा का केशव के पचास वर्ष बाद चलना, परवर्ती कवियों द्वारा भिन्न आदर्श को अपनाना और केशव का भक्तियुग में पड़ना।

## 1.3 रीतिकालीन प्रेरक परिस्थितियाँ

किसी भी भाषा अथवा देश, काल विशेष के साहित्य के सम्यक् मूल्यांकन के लिये सर्वप्रथम यह जानकारी आवश्यक है कि जिस समय सम्बन्धित साहित्य लिखा गया, उस समय परिस्थितियाँ किस प्रकार की थीं। इस दृष्टि से यदि रीतिकाल का मूल्यांकन करना है तो उसकी प्रेरक परिस्थितियों को जान लेना आवश्यक है। इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं कि रीतिकाव्य जिस रूप में उपलब्ध है, उसके मूल में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा कला एवं साहित्यपरक परिस्थितियों का बहुत बड़ा हाथ रहा है–

### 1.3.1 राजनैतिक परिस्थितियाँ

हिन्दी साहित्य का उत्तर मध्यकाल तथा रीतिकाल जिन परिस्थितियों में विकसित होकर सामने आया, वे उस समय की वास्तविकता को अपने में समेटे हुए थीं। ध्यान देने पर स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि उस समय सर्वत्र अव्यवस्था फैली हुई थी। मुगल साम्राज्य के वैभव का सूर्य अस्तोन्मुख दिशा की ओर तेजी से बढ़ता चला जा रहा था। सम्पूर्ण देश युद्ध और विप्लव का प्रांगण बना हुआ था। राजनैतिक अधःपतन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई थी, औरंगजेब के बाद गिरते हुए मुगल साम्राज्य के विशाल भवन को संभालने वाला कोई नहीं था। नादिरशाह और अब्दाली के आक्रमणों ने इस विनाशकारी अव्यवस्था को और अधिक गति प्रदान की। सामन्तशाही जर्जर अवस्था में थी किन्तु जनता को दलित और मर्दित करने में नहीं चूक रही थी। औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता से हिन्दू वर्ग कमजोर हो गया था और मुसलमान वर्ग विलास में डूबे रहने के कारण अपनी शक्ति को खो चुका था। ऐसी स्थिति में नागरिकों की औसतन स्थिति संतोषजनक नहीं थी। मेहनतकश किसान अच्छी पैदावार करते थे, किन्तु उनको दो समय की रोटी भी चैन से मयस्सर नहीं हो पाती थी। यह सम्पूर्ण समय मुगल साम्राज्य के ह्रास, हिन्दू शक्तियों के उत्थान तथा पतन और अंग्रेजी शक्तियों के क्रमिक विकास का इतिहास है। इस संदर्भ में डॉ. महेन्द्र कुमार ने लिखा है कि "जहाँ तक प्रदेशों का प्रश्न है, रीतिकालीन रचना के क्षेत्र – अवध, राजस्थान और बुंदेलखण्ड की कथा भी ऐसी ही है। अवध के विलासी शासकों का अन्त भी मुगल साम्राज्य के समान ही कारुणिक रहा। राजस्थान में भी विलास और बहु पत्नी प्रथा इतनी बढ़ गई कि औरंगजेब के बाद राजपुरुष कुचक्रों, षड़यंत्रों व आन्तरिक कलह का शिकार बन गये थे और वे इतने निर्वीर्य हो गये थे कि पतनोन्मुख मुगलों से अपने पुराने गौरव और राज्य को भी प्राप्त न कर सके। बुन्देलों ने अवश्य ही मराठों के साथ लाभ उठाने का प्रयास किया किन्तु राजपूतों के थोथे अहंकार एवं पारस्परिक विद्वेष के कारण सफलता प्राप्त करने में असफल रहे।

### 1.3.2 सामाजिक परिस्थितियाँ

सम्पूर्ण देश पर युद्ध के काले बादल मण्डरा रहे थे, आये दिन विप्लव की आग जनसाधारण को अपनी भभकती हुई ज्वाला में भस्मसात् करने की स्थिति बना रही थी। प्रायः नित्य प्रति युद्धों की चोट सहते रहने के

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

कारण भारतीय जनता निष्प्राण हो गई थी और उनका व्यक्तित्व पददलित होता हुआ क्षीण प्रायः हो गया था। सर्वत्र अराजकता फैल चुकी थी और समुचे देश में ठगों, चोरों, डाकुओं और युद्ध विचारक लोगों का बोलबाला बन चुका था। समाज की आत्मा संकुचित बन चुकी थी। दूर–दूर तक नव जागृति व नव–चैतन्य की किरणें दिखाई नहीं दे रही थी। कवि और कलाकार बड़े–बड़े प्रासादों में, शक्तिशाली लोगों की छत्र–छाया में सरस्वती की वीणा पर अपनी ऊँगली चलाये जा रहे थे। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् इन कलाकारों को छोटे–छोटे राजाओं और नवाबों का आश्रय लेने के लिये विवश होना पड़ गया था। मुगल सल्तनत अपने विलास और वैभव के लिये सर्वाधिक प्रसिद्ध रही है। रीति काव्य की दूरियाँ शाही हरम के लिये बुद्धिनी का काम करने वाली स्त्रियों का ही एक रूप थी। विलास भावना और श्रृंगारिकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुकी थी। वासना के प्रबल प्रवाह ने देश के संयम को बुरी तरह झकझोर दिया था। हिन्दुओं में जाति भेद की भावना सिर उठाने लग चुकी थी ऐसे राजनैतिक और सामाजिक पतन के युग में देश की नैतिकता भला कैसे सुरक्षित रह सकती है, परिणामतः सर्वत्र अनैतिकता हावी हो चुकी थी और जो सदाशयता थी वह लुप्त हो चुकी थी और पवित्रता तो न जाने कहाँ छुप कर अपनी अंतिम साँसें ले रही थी।

जब किसी देश का समाज वासना के कीचड़ में डूबता जा रहा हो, अनैतिकता हावी होती जा रही हो, तब उस देश में धर्म भी कैसे सुरक्षित रह सकता है? धर्म का आधार मंदिरों और मठों में भी नहीं रह गया था। मंदिरों और मठों की देव दासियाँ भगवान की पूजा के साथ–साथ भक्तों की सेवा के लिये अपना शरीर भी अर्पित कर अपनी वासना को तृप्त करती थी। ऐसी धार्मिक विपन्नता के वातावरण में जातीय बुद्धि का धरातल निरन्तर नीचे गिरता जा रहा था। अतः हम कह सकते हैं कि रीतिकालीन साहित्य की श्रृंगारिकता और कला, रस, अलंकार आदि के पूर्ण विकास के लिए उस समय की सामाजिक और ऐतिहासिक परिस्थितियाँ पूरी तरह से अनुकूल थी। कृषक और मजदूर वर्ग पूरी तरह शोषण के चक्र में फंस चुका था। जनसाधारण गरीबी के दलदल में पूरी तरह फंस चुका था, शासक वर्ग बिना किसी श्रम के ही सम्पन्न होते जा रहे थे। ऐसी स्थिति में यदि लोग भाग्यवादी अथवा नैतिक मूल्यों से रहित हो तो यह कोई आश्चर्य नहीं था। कार्य सिद्धि के लिये भ्रष्टाचार की प्रवृत्ति भी निरन्तर परवान चढती जा रही थी।

### 1.3.3 सांस्कृतिक परिस्थितियाँ

राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियों की भाँति इस युग की सांस्कृतिक स्थिति भी अत्यन्त शोचनीय थी। अकबर, शाहजहाँ और जहाँगीर की उदारतावादी नीति तथा संतों और सूफियों के उपदेशों के फलस्वरूप हिन्दू–मुस्लिम संस्कृतियों के पास आने का या सामंजस्य का जो प्रयास किया गया था वह औरंगजेब की कट्टरता के कारण समाप्त हो गया था। विलास वैभव का खुला प्रदर्शन होने लगा तथा इसी विलास के कारण धार्मिक भावों का दृढ़ता से पालन करना मुश्किल हो गया था। मंदिरों में ऐश्वर्य और भोग–विलास की खुले आम लीला चलने लगी थी। स्थिति यहाँ तक पहुँच गई थी कि हिन्दू अपने आराध्य राम और कृष्ण का आवश्यकता से अधिक श्रृंगार तो करने ही लगे थे परन्तु उनकी लीलाओं में अपने भोगी दृष्टिकोण को भी खोजने लगे थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही धर्म के सिद्धान्तों से निरन्तर अलग होते जा रहे थे। लोगों के पास बाह्याचरण ही मात्र धर्म पालन रह गया था। इस भोग विलास की बढ़ती हुई प्रवृत्ति के कारण निम्न वर्ग के लोग अंधविश्वासों के फेर में पड़कर निष्क्रिय हो गये थे। हिन्दू मंदिरों में और मुसलमान फेरों के तकियों पर जाकर अपने–अपने स्वार्थों की सिद्धि में लीन हो गये परिणामतः जनता के भोलेपन व उनके अंधविश्वास का पूरा–पूरा फायदा पुजारी, मौलाना, मौलवी आदि उठाने लग गये थे। धर्म के स्थान पर भ्रष्टाचार, पापाचार के केन्द्र सभी धार्मिक स्थल बन चुके थे और नैतिक प्रभाव समाप्त हो गया था।

### 1.3.4 साहित्य और कला की स्थिति

मुगल साम्राज्य के समय शिल्प कला, चित्रकला, संगीत, लेखन कार्य आदि ने अपने–अपने क्षेत्र में पर्याप्त उत्कर्ष प्राप्त कर लिया था। ललित कला और उपयोगी कला दोनों ही अभूतपूर्व उन्नति कर चुकी थी। कला प्रेमी मुगल शासकों ने फारसी और हिन्दू शैली के समन्वय से एक नई शैली का निर्माण किया, जिसकी छाप उस समय के स्थापत्य चित्रण, आलेखन आदि ललित कलाओं व सोने–चांदी, हीरे–जवाहरात के काम पर भी स्पष्ट अंकित रहती थी। इन सभी कलाओं में जहाँ एक ओर उस समय का ऐश्वर्य झलकता था वहीं दूसरी ओर उल्लास व श्रृंगार का

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

रसीलापन टपकता था। संगीत के क्षेत्र में भी गंभीरता नहीं रह गई थी। संगीत पूरी तरह से श्रृंगारिक भावों के अधीन होता चला जा रहा था। ऐसा लगने लगा था जैसे संगीत और श्रृंगार एक दूसरे के पर्याय बनकर जा खड़े हुए हों।

साहित्य और कला की दृष्टि से इस युग को समृद्ध कहा जा सकता है। इसमें सबसे बड़ी कठिनाई यह दिखाई देती है कि कवि और कलाकार राजाओं के आश्रय में रहते थे और वहीं राजाओं की रुचि के अनुसार उनको लिखना पड़ता था जिससे उनकी जीविका चलती थी और वे स्वतंत्रतापूर्वक सृजन नहीं कर पाते थे। यही कारण था कि श्रेष्ठ कलाकारों की कला दब कर रह गई थी। चमत्कार प्रदर्शन, पाण्डित्य प्रदर्शन और दरबारों में वाह–वाह लूटने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही थी। इस प्रवृत्ति के कारण जहाँ एक ओर कविता का विकास हुआ वहीं दूसरी ओर वह कविता आश्रयदाताओं के इशारे पर चलने वाली बन गई।

## 1.4 रीतिकालीन कविगणों की काव्यधाराएं

हिन्दी साहित्य के रीतिकाव्य में जिन कवियों ने काव्य सृजन किया है, उन कवियों को तीन प्रकार की काव्य धाराओं में विभाजित किया जा सकता है – रीतिबद्ध कवि, रीतिमुक्त कवि और रीतिसिद्ध कवि।

### 1.4.1 रीतिबद्ध कवि

रीतिबद्ध एक काव्य धारा है जिसका श्रीगणेश भक्तिकाल में ही हो चुका था। जिनमें आचार्य केशव का नाम सम्माननीय और अग्रगण्य है। रीतिबद्ध कवियों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में रखा गया है – अलंकार निरूपक आचार्य, रस और नायिका भेद के निरूपक आचार्य और सर्वांग निरूपक आचार्य। कुछ समीक्षकों ने पिंगल निरूपक आचार्यों की भी एक चौथी कोटि निर्धारित की है। सर्वांग निरूपक आचार्यों ने सभी विषयों पर अपना ध्यान आकर्षित किया – आचार्य चिन्तामणि, कुलपति मिश्र, देव, सूरति मिश्र, कुमारमणि शास्त्री, सोमनाथ, श्रीपति, भिखारीदास, प्रतापसिंह आदि आचार्य इस क्षेत्र के प्रमुख थे। अलंकार निरूपक आचार्यों ने अपने लक्षण ग्रन्थों के निर्माण के लिये चन्द्रलोक, कुवलयानन्द आदि पूर्ववर्ती ह्रासोन्मुख ग्रन्थों को ही आधार बनाया था। इन आचार्यों में केशव, जसवंत सिंह, मतिराम, भूषण, गोप, रसिक गोविन्द, दूलह, गोकुलनाथ और पद्माकर के नाम लिये जा सकते हैं। रस और नायिका भेद के निरूपक आचार्यों की दो कोटियाँ हैं – कतिपय आचार्यों ने मूल रूप से नायिका भेद और स्थूल रूप से श्रृंगार रस का निरूपण किया है। कुछ आचार्य ऐसे भी रहे जिन्होंने सभी रसों पर विचार किया। किन्तु सभी की दृष्टि श्रृंगार रस की ओर अधिक केन्द्रित रही। इस वर्ग के आचार्यों में तोष कवि, मतिराम, देव, कालिदास, कृष्ण भट्ट, श्रीपति, उदयनाथ, सोमनाथ, रसलीन, भिखारीदास, उजियारे, रामसिंह, गोविन्द, बेनी और पद्माकर आदि प्रमुख थे।

देव द्वारा किया गया रस–विवेचन अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत और मौलिक है। मतिराम, पद्माकर आदि के लक्षण उदाहरण न केवल सटीक हैं अपितु सरस भी हैं। रीतिकाल की रसिकता और सरसता के वास्तविक स्वरूप को प्रस्तुत करने वाले ये ही कवि हैं। रीति ग्रन्थों के प्रस्तोता आचार्य केशव ही माने जाते हैं।

'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' दोनों ही उत्तम कोटि के ग्रन्थ माने गये हैं। रीति काल के जसवंत सिंह ने भाषा भूषण की रचना कर अपने आचार्यत्व का साक्षात्कार कराया है। भूषण का 'शिव भूषण' ग्रन्थ एक अलंकार निरूपक ग्रन्थ है। मतिराम का कवि रूप आचार्य की तुलना में कहीं अधिक प्रबल है। आचार्य देव का आचार्य और कवि रूप दोनों ही समान रूप से अपना महत्त्वपूर्ण परिचय देता है। देव के सृजन में काव्यत्व के साथ–साथ एक श्रेष्ठ आचार्य तुल्य मौलिक चिन्तन भी स्वतः समाविष्ट हो गया है। भावों की सूक्ष्मता, भाषा पर असाधारण अधिकार, शब्दों की सगोत्रता, सरसता और इसके साथ–साथ उक्ति वैचित्र्य पर देव ने पूरा ध्यान आकर्षित किया है। श्रृंगार कालीन आचार्यों में भिखारीदास सर्वोच्च स्थान के अधिकारी हैं। ध्वनि, रस, अलंकार, गुण, दोष आदि सभी विषयों पर भिखारीदास ने लक्षण उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। रीतिबद्ध कवियों ने लक्षण ग्रंथों के आधार पर व्रत में काव्य रचना की इन्हें हम आचार्य वादी कह सकते हैं।

### 1.4.2 रीतिमुक्त कवि

रीति काव्य की एक दूसरी धारा रीतिमुक्त कवियों की हैं। इसे 'स्वच्छन्द काव्यधारा' भी कहा जाता है। इस वर्ग के प्रमुख कवियों में घनानन्द, बोधा, ठाकुर, आलम आदि विशिष्ट रहे हैं। ये वे कवि हैं जिन्होंने प्रयत्न करके

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

कविता नहीं लिखी है अपितु कविता तो स्वयं इनके हृदय से प्रस्फुटित होकर मुक्त कण्ठ से प्रवाहित हुई है। रीतिबद्ध कवियों ने चमत्कार की अभिव्यक्ति के लिये बुद्धि प्रेरित कविताएँ लिखीं; जबकि रीतिमुक्त कवियों ने भाव भावित कविता लिखी, जिसका प्रमाण समुचा रीति काव्य है। रीतिमुक्त कवियों ने काव्य को साधन रूप में नहीं बल्कि साध्य रूप में ग्रहण किया है। घनानन्द ने कहा है कि –

**'लोग है लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'**

प्रस्तुत उक्ति केवल घनानन्द पर ही चरितार्थ नहीं होती है, अपितु समुचे रीतिमुक्त काव्य पर लागू है। घनानन्द की कविता में संकलनकर्त्ता बृजनाथ ने भी इसी दृष्टिकोण से अपने उद्‌गार व्यक्त करते हुए कहा **'जग की कविताई के धोखे रहे, ह्याँ प्रवीनन की मति जाती जकी।'** अर्थात् रीतियुक्त कवियों की कविता को नेत्रों से नहीं बल्कि हृदय की आँखों से पढ़ा जाना चाहिये।

### 1.4.3 रीतिसिद्ध कवि

रीति काल के अन्तर्गत एक मात्र कवि बिहारी ऐसे हैं, जिन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जा सकता है, क्योंकि उन्होंने किसी भी प्रकार से किसी लक्षण ग्रन्थ का निर्माण नहीं किया है, अपितु रीति परिपाटी की सभी विशेषताएँ उनकी 'बिहारी सतसई' में सहज–स्वाभाविकता उपलब्ध है। उनकी सतसई में रस, भाव, नायिका भेद, ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति आदि को आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इस संदर्भ में आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अपने तर्क में कहा है कि "बिहारी ने आचार्य कर्म से दूर रहकर जो सतसई रची उसमें रीतियाँ स्वतः ही सिद्ध होती चली गई हैं, इसलिये उन्हें रीतिसिद्ध कवि कहा जा सकता है।" बिहारी को रससिद्ध कवि कहा जा सकता है। बिहारी की विख्यात रचना सतसई ने अप्रत्याशित लोकप्रियता प्राप्त की है क्योंकि उसमें मुक्तक शैली और रसात्मकता है। रसात्मकता ही बिहारी सतसई में प्रधान है अतः बिहारी उच्च कोटि के रीतिसिद्ध कवि रहे हैं। आचार्यत्व एवं कवित्व का मनोहारी संगम बिहारी में दिखाई देता है।

---

**बोध–प्रश्न**

---

**सही पर्याय चुनिये (वस्तुनिष्ठ प्रश्न)–**

1. रीतिकाल यह नामकरण किसने किया?
   (क) मिश्रबंधु (ख) विश्वनाथ प्रसाद मिश्र (ग) रामचन्द्र शुक्ल
2. लक्षण ग्रंथों का निर्माण किन कवियों ने किया?
   (क) रीतिसिद्ध (ख) रीतिबद्ध (ग) रीतिमुक्त
3. रीतिसिद्ध कवि कौन है?
   (क) बिहारी (ख) देव (ग) घनानंद

## 1.5 रीतिकालीन प्रवृत्तिगत विश्लेषण

रीतिकाल में दिल्ली में मुगल शासन था जिसमें विलासिता सामन्तवादी का वातावरण निरन्तर गुणोत्तर ढंग से बढ रहा था। जो सामान्य जनजीवन को अपने ही ढंग से प्रभावित कर रहा था। उस समय सृजनधर्मी रचनाकारों के सामने दो ही परिस्थितियाँ थीं– या तो सामन्तों और सम्राटों के साथ बैठकर विलासी बन जाये या उस वातावरण को विद्रोह भारी चुनौती दे। उस काल के कवियों ने दोनों ही मार्गों को अपनाया। कुछ कवियों ने राजा के आश्रय में रहकर अपनी सृजन धर्मी प्रवृत्ति को सफल बनाया और कुछ सामन्तों व शासकों को चुनौती देते थे। उस समय की परिस्थितियों से प्रेरित होकर और पुष्ट होकर जो परिस्थितियाँ सामने आईं उनमें शृंगारिकता अलंकारिकता और आचार्यत्व प्रदर्शन की प्रवृत्तियाँ प्रमुख थी। इनके अतिरिक्त नीति, भक्ति, वीररस की कविताएँ भी लिखी गई। उस काल में प्रकृति निरूपण भी हुआ किन्तु उसे उद्दीपन रूप में अधिक किया गया क्योंकि कवियों की दृष्टि नारी के प्रति उपभोग प्रधान रही, प्रेम का उदात्त पक्ष उपेक्षित रहा और उसका सम्भोगपरक और स्थूल पक्ष ही प्रधानतः कविता का विषय बना। रीतिमुक्त कवियों ने अति सूधो सनेह को मारग है।' कहकर प्रेम की उदात्तता

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun

के साथ–साथ अपने सौन्दर्यबोध की सूक्ष्मता, प्रेमगत समर्पणशीलता, उच्चता और विरहानुभूति की तीव्रता और स्वाभाविकता पर सर्वाधिक ध्यान दिया है। यहीं कारण है कि रीतिबद्ध कवियों की अपेक्षा रीतिमुक्त कवियों की अभिव्यंजना पद्धति में सहजता और अकृत्रिमता अधिक परिलक्षित होती है। इस काव्य में न तो पाण्डित्य का बोध होता है और न बौद्धिक चमत्कार है और न प्रदर्शन की प्रवृत्ति है। इसके विपरीत जो कुछ है वह हृदय से निकलती हुई स्वर लहरी है जो सीधे हृदय में प्रवेश कर जाती है। रीतिकालीन काव्यगत प्रवृतियों को हम निम्नलिखित बिन्दुओं से स्पष्ट कर सकते हैं–

### 1.5.1 शृंगाररस की प्रधानता

यद्यपि शृंगार रस से युक्त रचनाएं भक्तिकाल से ही प्रारम्भ हो चुकी थी, किन्तु रीतिकाल में यह प्रधान रूप से सामने आई। इस काल की जो शृंगारिकता है उसमें किसी प्रकार का दुराव–छुपाव नहीं है और न दमन से उत्पन्न कोई भी ग्रन्थियाँ हैं और न ही इन कवियों ने प्रेम को अतीन्द्रिय रूप भी प्रदान किया है। उन्होंने तो कुण्ठा रहित होकर के उन्मुक्त भाव से शृंगार सरिता में आकण्ठ निमग्न होकर अपनी मनोवृत्तियों की अभिव्यंजना की है। शृंगारिकता के लिये उन्होंने सौन्दर्य निरूपण, नायक–नायिकाओं के चित्रण और सौन्दर्य में भी शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि को प्रधानता दी है। इस काल में ऐसे शृंगारिक चित्र अधिक हैं, जिनमें ऐन्द्रियता है और 'इमोशनल रेस्पोन्स' है। संयोग और वियोग के चित्र भी इस काल में शृंगारिक मनोवृत्ति को स्पष्ट करते हैं। इस युग में जो संयोग सुख का वर्णन हुआ है, वह रूपासक्ति का परिणाम है। संयोग वर्णन में कवियों ने बहिर्केन्द्रीय सन्निकर्ष, हावादिजन्य चेष्टाओं, सुरत बिहार मद्यपान आदि के वर्णन किये हैं। दर्शन, स्पर्श, श्रवण, संलाप आदि इसी के अन्तर्गत हैं। इनकी प्रतिक्रियाएँ हाव, अनुभाव आदि में व्यक्त की गई हैं। वियोग वर्णन के अन्तर्गत पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण के वर्णन अधिक मिलते हैं, इसमें भी रूपासक्ति प्रमुख रही है। वियोग में स्मृति, गुण कथन आदि दसो मानसिक दशाओं के वर्णन द्वारा अवचेतन मन के रहस्योद्घाटन का निरूपण भी इस काव्य धारा के अन्तर्गत पर्याप्त मात्रा में मिलता है।

**संयोग और वियोग–** रीतिकालीन कवियों ने संयोग को तो कभी समझा ही नहीं। केवल प्रेम की पूर्णता प्रतिष्ठित करने के लिये विरहाग्नि में तप–तप कर उसका कंचन्वर्णी रूप और उनके यौवन पूरित अंगों व प्रत्यंगों का रचनाओं में चित्रित किया है। प्रथम तो इस काल के वियों ने संयोग को अपनी रचना में स्थान ही नहीं दिया और यदि दिया भी तो उसमें भी वियोग ही झलकता दिखाई देता है।

इस काल के कवियों का विरह रीतिमार्गी कवियों से पृथक है। रीतिबद्ध कविता में विरह का वर्णन शास्त्रानुमोदित है। वहाँ पर कभी तो माघ की लू चलती है और कभी सखियाँ जाड़े में विरहिणी नायिका को देखने के लिये गीले कपड़े पहनकर आती है। रीति कवियों का विरह वर्णन अट्टात्मक और बेजानशास्त्रीय अधिक हो गया है। रीतिमुक्त कवियों ने इसके विपरीत आत्मानुभूति को काव्य का विषय बनाया है। व्यक्तिगत जीवन की निराशा और पीड़ा में काव्य के उदात्तीकरण के परिणाम स्वरूप उनकी कविताओं में प्रभाविता व मार्मिकता अधिक है।

रैन–दिन घुटिवो करै प्रान, झरै दुखिया अंखिया झरनासी।।

उसके साथ ही विरह की वेदना अनुभवगमय अधिक है अतः रीतिमुक्त कवियों की विरह–वेदना को समझने के लिये मन की आँखें चाहिए–

समुझै कविता घन आनन्द की,हिय ऑखिन नेह की पीर तकी।

### 1.5.2 आचार्यत्व प्रदर्शन

हिन्दी साहित्य के उत्तर मध्य काल में शृंगारिकता के बाद यदि कोई महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति उभरकर सामने आई तो वह भी आचार्यत्व के प्रदर्शन की प्रवृत्ति। अधिकांश कवियों ने लक्षण निरूपण के नाम पर संस्कृत के साहित्य शास्त्र का अनुवाद कार्य जैसा किया है। 'हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास' ग्रन्थ में डॉ. भगीरथ मिश्र ने अपने वक्तव्य में कहा कि हिन्दी लक्षणकारों या रीति ग्रन्थकारों के सामने कोई वास्तविक काव्य शास्त्रीय समस्या नहीं थी। इनका उद्देश्य विद्वानों के लिये काव्य शास्त्रों के ग्रन्थों का निर्माण नहीं था वरन् कवियों और रसिकों को काव्य

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

शास्त्र के विषयों से परिचित कराना था'। इस कथन से यह स्पष्ट होता है कि इस काल में आचार्यत्व प्रदर्शन की प्रकृति तो मिलती है किन्तु इस प्रवृत्ति से कोई नया पन सामने उभरकर नहीं आया।

### 1.5.3 प्रेम की प्रधानता

इस धारा के कवियों की यह एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है। इस काव्य के कवि प्रेमी–मन रहे हैं और उमंग से कविता लिखते थे। उनके लिये प्रेम भावना की अभिव्यक्ति ही कविता का विषय बनी हुई थी। उनके काव्यों में भी प्रेम का यह रूप शायद ही आ पाता, यदि ये मनोवेगों के प्रवाह में बह कर कविता न लिखते–

**लोग लागि कवित्त बनावत।**

**मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।।**

प्रस्तुत पंक्तियाँ कवि घनानन्द के विषय में कही गयी हैं। इनकी इसी पैठ को पाकर प्रेमानुभूति राजमार्ग पर शुद्ध सात्विक भाव से चलने लगा। इन कवियों ने प्रेम को शारीरिक भूख की तृप्ति का साधन ही नहीं माना है अपितु आगे चलकर वह अलौकिकता की ओर भी झुका दिखाई देता है। कहते हैं कि घनानन्द की सुजान लौकिक होकर भी अलौकिक है। प्रेम का बाह्य पक्ष इसी कारण कमजोर हो गया और उसके विपरीत अन्तः पक्ष शक्ति सम्पन्न हो गया। अतः रीति कालीन कवियों ने अपनी कलम को प्रेम रस से सराबोर कर रखा था। रीतिकाल के अन्य कवियों ने प्रेम और श्रृंगार पर अनेक ग्रन्थ लिखें। उस काल में एक चौथाई लोग भक्त होते थे, एक चौथाई प्रेमी और दो चौथाई कवि व आचार्य। इसीलिये स्वच्छन्द प्रेम का एकाकी रूप काव्य में नहीं आ पाया। रीति मुक्त धारा के कवियों में प्रेम की चपलता का अभाव रहा है। शुद्ध सात्विक प्रेम, शुद्ध हृदय की शुद्ध अनुभूतियाँ ही उनकी कविता का आधार बनी।

**प्रेम का पक्ष** – रीतिकालीन कवियों ने प्रेम के लौकिक पक्ष को स्वीकार किया है जिनमें रसखान, ठाकुर, बोधा प्रेमानुभूति पक्ष के गायक रहे हैं। प्रसिद्ध कवि बोधा की प्रस्तुत पंक्तियाँ –

**जब से बिछुरे कवि बोधा हितू,**
**चित नैक हमारा थिरातो नहीं।**
**हम कौन सों आपनी पीर कहैं,**
**दिलदार तो कोउ दिखातो नहीं।।**

कवि बोधा और ठाकुर की कविताओं का लोक पक्ष बड़ा ही संयत है। कष्टों से पीड़ित प्रेमी भी प्रेम मार्ग से विरत हो सकता है। सच्चा प्रेमी इन सांसारिक बाधाओं से नहीं डरता है वह हर हालत में अपने प्रेमी जीवन की साधना को पूर्ण करता है।

**यह प्रेम का पंथ कराल महा,**
**तलवार की धार पै धावनो है।**

**1.5.4 भक्ति व नीति की धारणा** – रीतिकालीन कवियों की धारणा श्रृंगार से युक्त रही साथ ही अलंकारों के प्रति भी उनका मोह रहा किन्तु उनका एक ऐसा पक्ष भी रहा है जो इस काव्य को श्रृंगारेतर भावों से अलग कर देता है जिसकी वजह से अनेक कवियों ने नीति व भक्ति से युक्त रचनाएँ भी लिखीं। इन कवियों ने भक्ति संकलित रचनाएँ तभी प्रस्तुत की जब ये श्रृंगारिकता के आधिक्य से ऊब गये थे।

**1.5.5 भावना प्रधान** – रीतिकालीन कवियों की रचनाएँ प्रेम की शुद्ध और निश्छल अभिव्यक्ति के कारण भावना को अधिक महत्त्व देती है और जो भाव प्रियता हमें प्रेम प्रणाली में मिलती हैं वह कविता की भाषा में भी दिखाई देती है। बुद्धि को तो उस समय के कवियों ने गौण स्थन दिया है। प्रधान स्थान तो भावना को ही प्रदान किया गया है। रीतिकाव्य की रानी बुद्धि है और भाव उसका किंकर। परन्तु स्वच्छन्दता काव्य की रानी है और अनुभूति व बुद्धि उसकी दासी मानी गई है।

इस संदर्भ में घनानन्द ने कहा है कि –

**रीझि सुजान सची पटरानी।**
**बची बुद्धि बाबरी हवै करि दासी।।**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

यह धारा भाव प्रेरित है, बुद्धि–प्रधान नहीं। यही कारण है कि इस समय की रचनाएँ अनुभूति की गंभीरता रखती है जो कविता का आन्तरिक गुण है।

**1.5.6 अलंकरण के प्रति आग्रह** – रीतिकालीन रचनाओं में अलंकारिकता के प्रति आग्रह सर्वत्र परिलक्षित होता है। सम्पूर्ण काल में साधर्म्यमूलक और संभावनामूलक अलंकारों की प्रचुरता रही है। शब्दालंकारों में अनुप्रास, यमक और श्लेष के सफलतम प्रयोग किये गये हैं। विरोधाभास, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का अच्छा खासा प्रयोग कवि घनानन्द ने किया है। रीतिबद्ध कवियों ने अलंकार प्रयोग में गहरी रुचि प्रदर्शित की है, जबकि रीतिमुक्त कवियों ने सहज भाव से काव्य सृजन करते हुए अलंकरण प्रवृत्ति को स्थान दिया है।

**1.5.7 प्रकृति निरूपण** – रीतिकालीन रचनाओं में प्रकृति का भी अत्यन्त सुन्दर व मनमोहक निरूपण किया गया है। विशेष बात यह है कि रीतिकालीन प्रकृति चित्रण ऋतु वर्णन तक ही केन्द्रित रहा। जहाँ कहीं भी प्रकृति का निरूपण किया गया वहाँ प्रकृति ऋतुओं के अतिरिक्त उद्दीपन रूप में अधिक सामने आया है। संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में प्रवृत्ति को महत्त्व दिया गया है। जब बसंत ऋतु आती है तो 'औरे मन, औरे तन, औरे बन' तो हो ही जाते हैं, उनकी छवि के प्रसार के साथ–साथ नायिकाएँ भी छलिया, छबीले और छैल का चुनाव करने लगती हैं। फाग वर्णन भी बिहारी, देव, मतिराम, पद्माकर सभी में परिलक्षित होते हैं जो अपने आपमें मोहकता व रोमांच का गुण समाहित किये हुए हैं।

**1.5.8 नारी चित्रण** – रीतिकालीन कवियों की रुचि नारी के रूप–सौन्दर्य और उनके अंग–प्रत्यंगों का वर्णन करने में अधिक रही। विशेष बात यह रही कि इस काल के कवियों की दृष्टि में नारी मात्र विलासिनी ही थी। नारी के जननी, गृहणी, देवी, भगिनी आदि पवित्र रूप उनकी कलम और दृष्टि में नहीं बंध पाए। ऐसा लगता है जैसे नारी इस युग में भावनात्मक दृष्टि से रुग्ण थी। कवियों को नारी के अंग–प्रत्यंगों से वासना ही टपकती नजर आती थी, उन्हें इसके अतिरिक्त उनकी नजर में नारी का कोई महत्त्व दिखता ही नहीं था। उस समय में पुरुष भी इतने विकृत भाव वाले हो गये थे कि अपनी परिणिता की सेज को सूनी छोड़कर पर–नारियों के बिस्तर गरम करते थे और प्रातः होते ही रति अवशेषों को लेकर अपनी पत्नियों के सामने उपस्थित हो जाते थे, परिणामतः उन्हें रति वेदना और अधिक सताती थी जिससे उनके मनोभाव भी पर–पुरुषों के प्रति आकृष्ट होने लगते थे। उस समय की नारी स्थिति को देखकर ऐसा लगता है कि कवि का नारी विषयक दृष्टिकोण भी सामन्तीय था। उनका मानना था कि नारी समाज की चेतन इकाई न होकर एक निर्जीव वस्तु उपकरण मात्र है।

**1.5.9 शिल्प सौन्दर्य** – रीतिकालीन कवियों की दृष्टि कला से अधिक भाव की ओर थी। कवि ठाकुर और घनानन्द ने भी कला को कम महत्त्व दिया है –

**'लोग है लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'**

इसका तात्पर्य यह नहीं है कि इनका कलापक्ष कमजोर था, वह तो व्यवस्थित, रागृद्ध और परिमार्जित है क्योंकि वह भावानुमोदित है और भाव भाषा के सहचर हैं। लोकोक्तियों व मुहावरों से भाषा को समृद्ध बनाया गया है। भावों की गहराई और प्रेमभाव की एकनिष्ठता के परिचय के लिये हम जान सकते हैं कि –

**ऊधौ! वे अँखियाँ जर जाई जो सावरो, छाँड़ि तकै तन गोरो।'**

घनानन्द ने आगे के कवियों का मार्ग प्रशस्त किया है लाक्षणिक व ध्वन्यात्मक शब्दावली के प्रयोग से। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल का मत है कि "लक्षणा व व्यंजना का मैदान इतना विस्तृत व खुला था, फिर भी उसमें दौड़ लगाने की पहल केवल घनानन्द ने ही की।' भाषा पर इनका अचूक अधिकार था। अलंकारों में मानवीकरण और संवेदना ध्वन्यात्मक विरोधाभास के सुन्दर प्रयोग घनानन्द के काव्य में पर्याप्त रूप से विद्यमान हैं।

**'उजरानि बसी है हमारी अँखियन देखो,**
**सुबस सुदेस जहाँ रावरे बसत हों।'**

रीतिमुक्त स्वच्छंद धारा का अपना अलग महत्त्व है, जो समूचे रीतिकाल से पृथक अपना सम्बन्ध रखती है। प्रेमानुभूति की तीव्रता, सौन्दर्य का आन्तरिक विश्लेषण, भावनाओं की विभेदपूर्ण अभिव्यंजना, वियोग की अन्तर्मंथन वाली उक्तियाँ और भाषा का शुद्धतम और भावानुमोदित प्रयोग इस धारा की मुख्य विशेषताएं हैं।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ranchi

**1.5.10 कृत्रिम व्यापारों का परित्याग**– रीतिकालीन कवियों ने प्रेम के मार्ग में बाहरी अस्वाभाविक व्यवहार को छोड़कर स्वाभाविक व आन्तरिक अनुभूतियों को अधिक महत्त्व दिया है जिसके कारण ये सफल व सच्चे प्रेमी कवि कहलाये। कवि बोधा और ठाकुर इस संदर्भ में यही कहा करते हैं कि प्रेम को उद्घाटित करने का अर्थ ही उसका उपहास करना है। इस संदर्भ में कवि घनानन्द ने कहा है कि –

**'अति सूधो सनेह को मारग है,**
**जहाँ नेक सयानप बाँक नहीं।'**

**1.5.11 अनुभूति और रस** – अनुभूति को उसके तरल और व्यापक रूप में अभिव्यंजित करने का सवाल जटिल भले ही हो, परन्तु रीति कवि उसमें सक्षम अवश्य रहा है। संयोग और वियोग श्रृंगार के माध्यम से रीति की अनुभूति को कई रूपों और स्थितियों में प्रस्तुत करने में रीति कवि कदाचित् साहित्य की समग्र परम्परा का उपयोग करते हुए पूरे अतीत को लांघ गया है। संयोग और वियोग तो स्थितियाँ हैं, इन स्थितियों के भीतर अनुभवों के विस्तृत क्षेत्र हैं, भावों की अनन्त राशि है और जगत का व्यापक उपयोग है। मूलवृत्ति रीति को अनेक रूपों और सूक्ष्मताओं में रीति कवि ने देखा है। भावों, अनुभावों और विभावों की परिभाषागत और सूचिबद्ध संकेतों तथा प्रतीकों का उपयोग करते हुए भी उसमें अनुभूति की सरसता और सहजता को बनाये रखने तथा उसकी आह्लादक शक्ति को बढ़ा देने की क्षमता इनका व्यापक प्रमाण है। रीतिकालीन कवियों ने अपनी रचनाओं में स्थितियाँ उत्पन्न की हैं जो मनोभाव और शारीरिक प्रतिक्रिया का परिणाम होती है और कामेच्छा को उद्दीप्त करती है। बिहारी और देव दोनों ने विलास का व्यापक प्रयोग किया है। नायिका की प्रगल्भता और आकर्षित करने की पद्धति विलास का मुख्य गुण है, इसलिये यह सामन्तशाही ढाँचे के उपयुक्त भी है विशेष तौर पर वहाँ, जहाँ विलास दरबार की स्वाभाविक क्रिया थी। रति कवियों की इन योजनाओं में परिभाषाओं का विशेष ध्यान रखा है। बिहारी और देव दोनों ने नायिका के सचेष्ट संकेतों को ध्यान में रखते हुए भी स्थिति और नायिका के संकेत के संदर्भ में नए अर्थों का प्रयोग किया है। कार्य व्यापार को भी अनुभूति बना देना बड़ा अद्भूत है –

**'नासा मोर नचाय दृग, करी ककी की सौहं।**
**फाटे से कसकत हिये बहै कटीली भौंह।।**
**भौंह उचै आँचरि उलटि, मोरि मुह मोरि।**
**नीठि–नीठि भीतर गई, दीठि–दीठि सों जोरि।।'**

**1.5.12 काव्य रूप** – काव्य रूप की दृष्टि से यदि रीतिकाल के साहित्य सृजन को देखा जाये तो यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि इस काल में मुख्य रूप से मुक्तक काव्य ही लिखा गया था। कवित्त, सवैया, दोहा आदि में रचित रीतिकाव्य मुक्तक शैली का श्रेष्ठ उदाहरण है। अपवाद स्वरूप कुछ प्रबन्ध काव्यों की रचना अवश्य हुई है किन्तु वे अधिक उल्लेखनीय नहीं है।

**1.5.13 वीररस एवं हास्य रसात्मक रचनाएँ** – रीतिकाल में प्रशस्तिपरक अथवा वीर रसात्मक रचनाएँ भी हुई हैं जिनमें भूषण का नाम सर्वोपरि आता है। रीतिकाव्य के अन्तर्गत वीर काव्य की पाँच पद्धतियाँ हमें मिलती हैं – शुद्धवीर काव्य, श्रृंगार मिश्रित वीर काव्य, भक्तियुक्त वीर काव्य, अनूदित वीर काव्य और प्रकीर्ण वीर काव्य। इन रचनाकारों में केशव, भूषण, पदमाकर आदि प्रमुख हैं। कुछ समीक्षकों में भूषण को वीर काव्य का प्रणेता होने के साथ–साथ जातीयता से ओत–प्रोत भी माना है।

रीतिकाल की एक प्रवृत्ति हास्य रस से भी जुड़ी हुई है। यद्यपि यह अपवाद स्वरूप ही रही प्रवृत्ति है किन्तु काव्य में प्रणयन अवश्य हुआ है। संस्कृत में तो हास्य के आलम्बन महादेवजी रहे हैं और वे ही श्रृंगारकालीन हास्य की रचनाओं में प्रमुख स्थान पर रहे हैं।

**1.5.14 बिम्बात्मकता** – रीतिकाव्य चित्रात्मकता में अकेला रहा है। इस काल के कवियों ने उपयुक्त शब्दों का चयन करते हुए अपने सौन्दर्य बोध को चित्रात्मक शैली में प्रयुक्त किया है। नायक–नायिकाओं के मनभावन चित्र प्रस्तुत किये गये हैं जिन्हें कोई भी चित्रकार उन दोहों, कवित्तों और सवैयों को पढ़ लेने मात्र से अद्भूत व मौलिक

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

चित्र प्रस्तुत कर सकता है ये रेखाचित्र, वर्णचित्र, वर्णों का मिश्रण चित्र, विरोधी वर्ण योजना और वर्ण परिवर्तन के सहारे खड़े किये गये चित्र भी हैं।

**1.5.15 ब्रज भाषा की प्रधानता** – रीति काव्य की भाषा प्रधानतया ब्रज भाषा ही है। इसका परिष्कृत, सहज, सरल और कोमल रूप रीति काव्य में देखने को मिलता है इसमें अवधी, बुन्देलखण्डी, छत्तीसगढ़ी, उर्दू, फारसी आदि के शब्द भी पर्याप्त मात्रा में काम आये हैं। भाषा की सम्प्रेषण शक्ति को बढ़ावा देने के लिये कवियों ने मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है। इस संदर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा कि "भाषा के भी विश्रामदायक और विरोधी गुणों का इस काव्य में खूब मार्जन हुआ है, परन्तु इसे इस योग्य बनाने का प्रयत्न किसी ने भी नहीं किया कि यह गंभीर विचार प्रणाली का उपयुक्त वाहन बन सके।"

## 1.6 रीतिकालीन काव्य की प्रमुख विशेषताएँ

रीतिकाल की रचनाएँ अपने आप में अनेक विशेषताओं को लिये हुए हैं। इन विशेषताओं का विवेचन हम निम्नलिखित आधार पर कर सकते हैं –

### 1.6.1 रीतिबद्ध कवियों की विशेषताएँ

**1.6.1.1 आचार्यत्व के प्रति आकर्षण** – रीतिबद्ध कवियों में चिन्तामणि, मतिराम, भूषण, पद्माकर, सेनापति आदि का नाम प्रमुख रूप से लिया जाता है। इन्होंने लक्षण ग्रन्थों की रचना की। कुछ कवि रस–सम्प्रदाय से जुड़े हुए थे, जबकि कुछ अलंकार सम्प्रदाय से जुड़कर काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रणयन कर रहे थे। इनको पूरा विश्वास था कि लक्षण ग्रन्थ रचकर ये बहुत बड़े आचार्य कहलाएँ। इन ग्रन्थों की रचना अपने ही आश्रयदाताओं के आदेश से की गई थी। केशवदास ने प्रवीण राय को काव्य–शास्त्र पढ़ाने के लिये 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' की रचना की।

**1.6.1.2 शृंगार को महत्त्व** – रीतिबद्ध कवियों में शृंगारिकता की भावना सर्वाधिक पाई गई है, यद्यपि शृंगारपरक रचनाएँ भक्तिकाल के कवियों ने भी की किन्तु रीति कालीन रीतिबद्ध कवियों ने इसे खुले रूप में अधिक किया है। इनकी जो शृंगारिकता है इसमें कोई दुराव–छुपाव नहीं है और न दमन से उत्पन्न कोई ग्रन्थियाँ हैं। इन कवियों ने प्रेम को अतीन्द्रिय रूप भी प्रदान नहीं किया। उन्होंने तो कुण्ठा रहित होकर उन्मुक्त भाव से शृंगार सरिता में आकण्ठ निमग्न होकर अपनी मनोवृत्तियों का अभिव्यंजन किया है। शृंगारिकता के लिये उन्होंने सौन्दर्य–निरूपण, नायक–नायिकाओं के चित्रण और सौन्दर्य में भी शोभा, कान्ति, दीप्ति आदि को प्रधानता दी है। वैसे रीतिबद्ध कवियों ने अपने–अपने ढंग से अपनाया। कृष्ण भक्ति परम्परा में रीतिकाल के प्रभाव से माधुर्य भाव को प्रधानता मिली। रामभक्ति धारा को मर्यादावादी दृष्टिकोण से जाना जाता है। इसमें भी सखी सम्प्रदाय चल निकला और प्रेम–लीलाओं का अति रंजित रूप वर्णन में आया। संयोग–वियोग भी इस युग की शृंगारिक मनोवृत्ति को स्पष्ट करते हैं। इस युग में जिस संयोग का वर्णन किया गया है वह रूपासक्ति का परिणाम है।

**1.6.1.3 नारी के दैहिक सौन्दर्य की अधिकता** – इस काल के रीतिबद्ध कवियों की रुचि नारी चित्रण की ओर अधिक रही। विशेष बात यह है कि इन कवियों ने नारी को केवल विलास की वस्तु माना। नारी का नख–शिख वर्णन चटखारे के साथ किया। ऐसा लगता है कि नारी के देवी, शक्ति, प्रेरणा मातृ, समर्पित व त्याग की प्रतिमा जैसे रूप तो उनकी कलम व दृष्टि में बँध ही नहीं पाये थे और सामयिक प्रभाव से प्रेरित होकर उसके रूप सौन्दर्य का चित्रण करने में ही सारी शक्ति लगा दी। इन कवियों के द्वारा नायिका भेद को प्रमुख रूप से चित्रित किया गया। शायद रीतिबद्ध कवि यह नहीं जानते थे कि प्रेम का अर्थ रूप लालसा के अतिरिक्त भी कुछ और होता है। इस काव्य में प्रेम का कोई उच्च आदर्श प्रस्तुत किया ही नहीं। ये नारी को समाज की चेतन इकाई न मानकर मात्र उपकरण ही मानते रहे।

**1.6.1.4 कवित्त शक्ति की अवहेलना** – रीतिबद्ध कवियों ने अपने मूलतः कवि रूप का तिरस्कार किया। उन्होंने अपने लक्षण ग्रन्थों में विभिन्न मत प्रस्तुत कर अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। उन कवियों में एक ही तथ्य पर भाँति–भाँति की परिभाषाएँ लिखकर अभिव्यक्त करने की क्षमता थी, किन्तु उन्होंने अपने कवित्व गुण का सदुपयोग नहीं किया। अन्ततः अपनी ही दृष्टि से अपनी क्षमता को प्रकट करने का प्रयास किया गया था।

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**1.6.1.5 मौलिक चिन्तन का अभाव** – रीतिकालीन आचार्यों ने अपने मौलिक ग्रन्थ न लिखकर उनमें संस्कृत आचार्यों के विचारों और सिद्धान्तों को ही अपनाया गया, जिसमें भी मौलिकता का पूर्णतः अभाव रहा। कहीं–कहीं प्राचीन लक्षण से हटकर कुछ लिखना भी चाहा तो वह हास्यास्पद बन गया। ऐसा लगता है कि इस काल के कविगण व मुख्य आचार्यों ने अपने आप को रूढिवादिता से जोड़े रखना ही उचित समझा। मौलिक दृष्टि विकसित करने की ओर उनका ध्यान ही नहीं गया। यदि वे उपयुक्त ध्यान देते तो उन्हें चिन्तन की मौलिकता में सफलता सुनिश्चित थी।

**1.6.1.6 प्रकृति वर्णन** – रीतिबद्ध कवियों की दृष्टि में प्रकृति केवल नायक–नायिकाओं की प्रेम लीलाओं के उद्दीपन का साधन रही। आलम्बन के रूप में प्रकृति का चित्रण किसी ने भी नहीं किया। इस युग की प्रकृति चित्रण ऋतु वर्णन तक ही सीमित था। संयोग और वियोग दोनों ही स्थितियों में प्रकृति को महत्त्व दिया गया। बसंत के आगमन के साथ ही उस युग की नायिका अपने प्रियतम के मिलन व रति क्रिया की स्थिति का अनुभव करने लगती है।

**1.6.1.7 आश्रयदाता की प्रशंसा** – रीतिकालीन अधिकतर कविगण किसी न किसी राजा या अन्य शासकों के आश्रय में रहकर अपना सृजन कार्य कर रहे थे और युग प्रवृत्ति के अनुसार उन्होंने जमकर उनकी प्रशंसा अपनी रचनाओं के माध्यम से की। यहाँ तक कि इन कवियों ने उनकी प्रशंसा में जो भी वर्णन किया, वह अतिशयोक्तिपूर्ण किया। कई रचनाकारों ने तो अपनी रचनाएँ आश्रयदाताओं को ही समर्पित कर दी और उनका नामकरण भी उन्हीं आश्रयदाताओं के नाम पर किया गया।

**1.6.1.8 नीति और भक्ति** – रीतिकाल में भक्ति प्रदर्शन का अंग बन गई। यहाँ तक कि इन कवियों के द्वारा भक्ति के अनेक बहाने खोजे जाने लगे और इन्हीं बहानों के रूप में रीतिकालीन प्रवृत्तियों को अपनाया गया। भक्ति आस्था नहीं रही, आराधना नहीं रही। यहाँ तक कि भक्ति को घटते हुए देखकर जीवन मूल्यों के बहाने उसे बचाने की आवश्यकता महसूस होने लगी। उस भक्ति के पीछे भी श्रृंगारिकता की प्रेरणा भी रही है। इन कवियों ने भक्ति से सम्बन्धित रचनाएँ तभी की जब ये श्रृंगार से ऊब गये थे और इसलिये भी ये कुछ समय के लिये नायक–नायिकाओं के शारीरिक सम्बन्धों को भुला सकें।

**1.6.1.9 विभिन्न शैलियों का प्रयोग** – रीतिकाल में रीतिबद्ध कवियों ने अपनी रचनाओं में किसी ने तो कवित्त और छप्पय शैली को अपनाया, किसी ने सवैया शैली को और किसी ने कुण्डलिया शैली को अपनाया। गोस्वामी तुलसीदास और मलिक मोहम्मद जायसी की दोहा–चौपाई शैली का बहुत प्रयोग किया गया। बिहारी ने तो काव्य रचना के लिये केवल दोहा शैली का ही आश्रय लिया। केशव ने अपनी रचना 'रामचन्द्रिका' को तो छन्दों का अजायबघर ही बना दिया। रीतिकाल में प्रबन्ध काव्य कम लिखे गये। अधिकतर रचनाकारों ने मुक्तक छन्दों में अपने भावों को व्यक्त किया और उन्हें निबद्ध किया। उनको सुनाकर वे राज दरबारों में प्रचुर पुरस्कार प्राप्त किया करते थे।

## 1.6.2 रीतिसिद्ध कवियों की विशेषताएँ

रीतिकाल के रीतिसिद्ध कवियों में बिहारी का स्थान सर्वोपरि माना जाता है। यद्यपि उन्होंने किसी रीतिग्रन्थ को नहीं लिखा किन्तु उनकी एकमात्र रचना 'सतसई' को पढ़ने के उपरान्त उस काल के वातावरण को आसानी से समझा जा सकता है। जो प्रसिद्धि 'सतसई' को मिली, उतनी तो रीतिकालीन किसी अन्य रचना को नहीं मिली। पण्डित अम्बिकादत्त व्यास ने 'बिहारी विहार' में निम्नलिखित दोहा लिखकर उनके जीवन व जन्म के सम्बन्ध में प्रकाश डाला है –

**संवत् जुग सर रस सहित, भूमि रीति गिन लीन।**
**कार्तिक सुदि बुद्ध अष्टमी, जन्म हमें विधि दीन।।**

बिहारी का बचपन बुन्देलखण्ड में व्यतीत हुआ और विवाह पश्चात् बिहारी मथुरा आ गये। मुगल सम्राट शाहजहाँ के निमन्त्रण के साथ वे आगरा चले गये। वहाँ पर बिहारी का परिचय अनेक राजाओं से हुआ और इसी

Jan Vishva Bharati Institute (Deemed University) Lalitpur

परिचय के परिणामस्वरूप बिहारी जयपुर नरेश जयसिंह के आश्रय में रहने लगे। यद्यपि इन्होंने एक ही कृति लिखी है, किन्तु उसी के आधार पर बिहारी को पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई। प्रतिभाशाली होने के कारण बिहारी का काव्य तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से पूर्ण दिखाई देता है। इनकी रचना में श्रृंगार भी है, भक्ति भी है, नीति भी है, किन्तु युगीन प्रभाव के कारण श्रृंगार सब पर हावी रहा है। शब्द शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण प्रयोग इनकी रचना में परिलक्षित होता है। इनकी रचना का प्रत्येक दोहा **'गागर में सागर भरने वाला'** है। प्रत्येक दोहा काव्यात्मक और कलात्मक है। बिहारी के काव्य की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1. कवि बिहारी की रचना में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का आकर्षक चित्रण किया गया है। संयोग श्रृंगार का वर्णन शास्त्रीय आधार पर किया है। यद्यपि उनके इस वर्णन में कहीं–कहीं मर्यादा का उल्लंघन ही दिखाई देता है, किन्तु उनकी सरसता और मोहकता आज भी पाठकों के मन और मस्तिष्क में विद्यमान है और लोगों को मुग्ध करती रहती है। संयोग की भाँति वियोग का वर्णन भी किया गया है किन्तु संयोग रचनाओं के तुल्य सफलता नहीं मिल सकी।
2. बिहारी की रचना में कला के प्रति अत्यधिक आग्रह परिलक्षित होता है कहीं–कहीं तो शब्द योजना का चमत्कार चरम सीमा तक पहुँच गया है।
3. बिहारी के दोहे काव्यपरक व रसपरक हैं।
4. भक्ति और विनय के दोहे काफी प्रभावपूर्ण हैं।
5. नीति व दर्शन सम्बन्धी दोहे यद्यपि संख्या में कम हैं, किन्तु अत्यन्त प्रभावशाली हैं।
6. बिहारी के दोहों में जहाँ कल्पना की समाहार शक्ति है, वहीं भाषा की समास शक्ति की प्रबलता भी देखी जा सकती है।
7. अनुभवों के आधार पर भावों की तीव्रता, प्रखरता व गहनता से विषय वस्तु का सजीव वर्णन किया गया है।
8. बिहारी की भाषा चलती हुई होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूपों का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर हुआ है।
9. रीतियाँ सामयिक प्रभाव से स्वयं ही सिद्ध हो जाती हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि बिहारी रीतिकाल के सुप्रसिद्ध कवि थे उनके 'सतसई' में सभी प्रकार की रुचि रखने वाले लोगों को अपनी ओर आकर्षित किया है। यद्यपि इनकी रचना में श्रृंगार की प्रमुखता है किन्तु उसमें भक्त के लिये भक्ति, नीतिज्ञ के लिये नीति, प्रेमी के लिये प्रेम समाहित है।

## 1.6.3 रीतिमुक्त काव्य धारा

रीतिमुक्त कवि वे कवि हैं जो काव्य शास्त्रीय नियमों से मुक्त रहकर काव्य सृजन में प्रवृत्त हुए। रीतिबद्ध और रीतिमुक्त दोनों कवियों के धरातल भिन्न हैं। इनका काव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण भी दो विरोधी रेखाओं को छूता है। रीतिबद्ध कवियों ने शास्त्रीय परम्परा को आधार बनाकर काव्य रचना की है तो रीति मुक्त कवियों ने परम्परागत मार्ग को नहीं अपनाया। काव्य को अनुभूति प्रेरक मानकर उन्होंने भाव को प्रमुख और भाषा को गौण स्थान दिया। रीतिमुक्त का सीधा सा अर्थ है – रीति, बंधन और परिपाटी से मुक्त। रीतिकाल की यह स्वच्छन्द काव्यधारा मुक्त कवियों की मुक्त धारा है। हम इसे स्वच्छन्द धारा इस दृष्टि से मानते हैं कि इसमें काव्य परिपाटी से अलग हटकर काव्य सर्जना हुई है। इस धारा के कवि वे कवि हैं जिन्होंने प्रयत्न करके कभी कविता नहीं लिखी बल्कि कविता उनके हृदय से स्वतः निकली।

रीतिमुक्त कवियों ने काव्य को साधन रूप में नहीं अपितु साध्य रूप में ग्रहण किया है इस संदर्भ में रीतिमुक्त सुविख्यात कवि घनानन्द ने कहा है –

**'लोग हैं लागि कवित्त बनावत,**
**मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'**

उक्त पंक्तियाँ न केवल घनानन्द पर ही लागू होती हैं अपितु सभी रीतिमुक्त कवियों पर चरितार्थ है। इसी बात को पुष्ट करते हुए घनानन्द की कविता के संकलनकर्त्ता बृजनाथ ने कहा है कि –

**'जग की कविताई के धोखे रहे,**
**ह्या प्रवीनता की गति जाकी जकी।'**

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

अर्थात् रीतिमुक्त कवियों की कविता को नेत्रों से नहीं हृदय की आँखों से पढ़ा जाता है। प्रेम के क्षेत्र में पवित्रता व उदात्तता को स्थान दिया गया है, इसी कारण रीतिमुक्त कवियों ने अपने काव्य में अनेक ऐसी स्थितियों का वर्णन किया है जो आज भी हमारे मन को प्रभावित करती हैं। इस काव्यधारा की प्रमुख विशेषताओं को हम निम्नलिखित रूप में जान सकते हैं –

**1.6.3.1 परम्परामुक्त मार्ग** – इन कवियों ने रीतिबद्ध कवियों से पृथक अपने काव्यदर्शन प्रस्तुत किये। वस्तुतः इनका काव्य भावना प्रधान है। वह बाह्य चित्रण की अपेक्षा आन्तरिक चित्रण को अधिक महत्त्व देता है। घनानन्द और बोधा जैसे कवियों का उद्देश्य हृदय के भावावेगों को स्वच्छन्द भाव से अभिव्यक्त करना था। आत्म विभोर होकर काव्य रचना करने वाले ये कवि बौद्धिकता को काव्य के अनुकूल नहीं मानते थे। घनानन्द ने इसी कारण से प्रिय के रूप सौन्दर्य पर समर्पित होने और रीझने को अधिक महत्त्व दिया है। बुद्धि को तो उन्होंने दासी बनाकर रखा है।

**1.6.3.2 व्यक्ति प्रधान काव्य** – इस धारा में प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति आत्मपरक शैली में हुई है। रीतिबद्ध कवियों ने प्रेमी प्रेमिकाओं की हाव भावों की जैसी व्यंजना की है, वैसी व्यंजना यहाँ नहीं मिलती है। रीतिबद्ध काव्य यदि वस्तु प्रधान तो रीतिमुक्त काव्य व्यक्ति प्रधान। इस धारा के कवि अपने निजी जीवन में कहीं न कहीं चोट खाये अवश्य थे। यही कारण है कि रीतिमुक्त कवियों का वियोग वर्णन हृदय से निकली हुई सच्ची आवाज प्रतीत होती है।

**1.6.3.3 वेदनायुक्त प्रेम दर्शन** – इन कवियों के प्रेम दर्शन में वेदना की अधिकता है वह इन कवियों के यहाँ इतनी प्रखर होकर आई है कि संयोग में भी पीड़ित करती रहती है।

**'यह कैसी संयोग न सूझि परै,**
**जो वियोग न क्यों हूँ, बिछोहतु है।'**

परम्परावादी श्रृंगार वर्णन संयोग के हर्ष और वियोग के विवाद के अन्तर्गत हुआ है, अतः रीतिमुक्तक काव्य की व्यथा–प्रधानता उसे प्रचलित परम्परा से पृथक प्रमाणित करती है। इसका एक प्रमुख कारण यही है कि फारसी का प्रभाव इसके मूल में है। यहाँ भी प्रेम वेदना प्रधान हो कर ही अधिक वर्णित हुआ है, दूसरे तत्कालीन समाज की छाया इन कवियों के मन पर पड़ी। वस्तुतः इस काल के व्यक्ति में घुटन, पीड़ा और निराशा के भाव ही प्रमुख थे। यही कारण है कि असंतोष से युक्त इस काव्य में जिस प्रेम और उससे सम्बन्धी वेदना की अभिव्यक्ति हुई है वह अत्यन्त स्वाभाविक और विश्वसनीय प्रतीत होती है।

**1.6.3.4 प्राचीन काव्य परम्पराओं का परित्याग** – रीतिकालीन सम्पूर्ण साहित्य या तो अलंकारों की चमक–दमक से पूर्ण है या फिर नायिका भेद और उसी से सम्बन्धित अनेक कार्यकलापों का वर्णन प्रमुखता लिये हुए है। रीतिमुक्त कवियों ने इन दोनों ही प्रवृत्तियों से बचने का प्रयास किया है। इनके काव्य में न तो अलंकारों का अनावश्यक बोझ है न नायक–नायिकाओं के रीतिबद्ध स्वरूप का चित्रण है। ठाकुर ने अपनी रचनाओं में अलंकार रहित भाषा का प्रयोग किया है। घनानन्द ने अलंकारों का प्रयोग तो किया है किन्तु वे उनके भावों के अनुगामी हैं। ऐसा नहीं है कि भाव अलंकारों से दिशा निर्देश प्राप्त करते रहे हों। आलम और घनानन्द के काव्य में सैंकड़ों ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ पर अलंकार का निशान तक नहीं है फिर भी कविता अपनी मार्मिकता से पाठकों के हृदय पर अमिट छाप छोड़ती चली गई है। इस प्रकार रीतिमुक्त कवियों के वर्ण्य–विषय और वर्णन शैली दोनों ही भिन्न हैं और वे काव्य परम्परा से मुक्त हैं।

**1.6.3.5 भावात्मक प्रेम की अभिव्यक्ति** – इन कवियों की प्रेम सम्बन्धी धारणाएँ भी रीतिबद्ध कवियों से अलग है इन कवियों के प्रेम में पवित्रता, एकनिष्ठता, समर्पण, त्याग और उदारता का समावेश है। कहीं भी वासना की गंध का अनुभव नहीं होता है। प्रेमी प्रेम की पीड़ा को सहकर भी प्रिय की कुशल कामना करता रहता है। भले ही प्रिय न मिले किन्तु प्रेमी तो उसके लिये हर स्थिति में समर्पित रहेगा ही यह भाव समस्त रीतिमुक्त कवियों में दिखाई देता है। प्रेम की अनन्यता के भाव इन कवियों ने बड़ी दृढ़ता के साथ अपनाएँ हैं इसी कारण इनका प्रेम भावात्मक अधिक है।

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

**1.6.3.6 सहज व निश्छल भाषा का प्रयोग** – जहाँ रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में अलंकारों की भरमार दिखाई देती है और शब्दों का तोड़–मरोड़ रूप दिखाई देता है, वही रीतिमुक्त कवियों की रचनाओं में भाषा की सहजता है। शब्द भी अपनी स्वच्छन्द और आकर्षक गति के साथ आगे बढ़ते हुए दिखाई देते हैं। घनानन्द, ठाकुर, बोधा, आलम आदि सभी की भाषा में प्रेषणीयता, लाक्षणिकता और व्यंजना अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों को सफल अभिव्यक्ति देने में समर्थ हुए। उनका काव्य अलंकारों का मुखापेक्षी नहीं है। भाषा, लोकोक्तियों व मुहावरों से सजी हुई होने के कारण रीतिमुक्त कवियों की भाषा में लोक जीवन का स्पर्श तो दिखाई देता है, उसमें प्रेषणीयता और अर्थवत्ता की चरम सीमा भी मिलती है। इस प्रकार रीतिमुक्त काव्य प्रेमानुभूति, वेदनानुभूति, विविध मनोदशाओं के अभिव्यंजन, सरस अनुभूतिमयता, भाषा की असाधारण विशेषताओं के कारण भविष्य की छायावादी कविता का पूर्व रूप दिखाई देता है।

## 1.7 निष्कर्ष

इस प्रकार रीतिकाल विषय, अभिव्यक्ति और जीवन दर्शन की दृष्टि से एक विशेष सीमा में बँधा हुआ दिखाई देता है। श्रृंगार के दोनों पक्ष जिस रूप में इस काल में अभिव्यक्ति पा सके, वैसी अभिव्यक्ति पूर्ववर्ती रचनाओं में नहीं मिलती है।

रीतिकाल के अध्ययन से सर्वप्रथम यह निष्कर्ष निकलता है कि इस समय वीर भावना तो प्रायः क्षीण हो गई थी और शेष सारे काव्य साहित्य पर कृष्ण काव्य का प्रभाव है जिसमें नारी सौन्दर्य की मादकता है, आध्यात्मिकता के स्थान पर श्रृंगार की ओर अधिक झुकाव है। धार्मिक श्रृंगार का आश्रय अवश्य किया है, किन्तु सम्पूर्ण वातावरण लौकिक श्रृंगार का है। रीतिकालीन साहित्य का सम्बन्ध दरबारों से है। उनका सृजन शासकों की रुचि के अनुसार हुआ है ये दरबार मुगल दरबारों के अधीन थे। कवियों का दृष्टिकोण सीमित और असंतुलित रहा है। जिस नारी का उन्होंने वर्णन किया है उसमें व्यक्तित्व का पूर्ण अभाव है। इनके काव्य में सामाजिक उत्थान की भावना भी नहीं पाई जाती है। उनकी दृष्टि जीवन के मौलिक प्रश्नों पर नहीं गई साथ ही सारा साहित्य काव्यशास्त्र की दृष्टि से लिखा गया है, क्योंकि इस काल में तथा इससे पूर्व संस्कृत के काव्य शास्त्र का अध्ययन होने लगा था। रीति कवियों ने हिन्दी साहित्य का विश्लेषण नहीं किया। इन्होंने संस्कृत साहित्य परम्परा का पालन करते हुए आचार्यत्व नहीं, अपनी कवित्व शक्ति की प्रस्तुति दी। इस काल में आचार्यत्व कम और कवित्व शक्ति अधिक मिलती है। काव्यांगों (भिखारीदासकृत 'वाक्य–निर्णय') रसों (केशवकृत 'रसिक–प्रिया') नायक–नायिका भेद (चिन्तामणिकृत 'श्रृंगार निर्णय) अलंकार (जसवंतसिंह का 'भाषा–भूषण') आदि के विवेचन का प्रधान आधार संस्कृत काव्यशास्त्र है और उसमें मौलिकता का अभाव है। केवल नायक–नायिका का रूप देने तथा मध्ययुगीन सामाजिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के परिणामस्वरूप प्रचलित बाल–विवाह, पर्दा, स्त्री सम्बन्धी आदर्श व पतन आदि कारणों से उसे अधिक विस्तार प्राप्त हुआ है। रीतिकालीन काव्यों में स्त्रियों की वेश–भूषा, आभूषणों, पुष्पों आदि जीवन रीतिकालीन कवियों ने या तो काव्य के सब अंगों का वर्णन किया है और या रस निरूपण ही किया है, किन्तु काव्यान्तर्गत दृश्य काव्य का विवेचन किसी भी कवि ने नहीं किया है। रीतिकालीन कवि प्रधानतः कवि थे, न कि आचार्य। कुछ कवियों को छोड़कर अधिकतर कवियों का सौन्दर्य कृत्रिम रहा है। रीतिकालीन कवियों ने नख–शिख, अष्टयाम, षटऋतु आदि के वर्णन भी किये हैं जिनका पूर्व रूप संस्कृत से मिलता है। भाषा की दृष्टि से बहुत कम कवि ऐसे हैं जिन्होंने ब्रज भाषा को सुव्यवस्थित रूप से काम में लिया है। इसका तो मूल कारण यह है कि इस काल के कवि बृजवासी नहीं थे। सम्यक् दृष्टि से विचार करने पर इस काल में त्रुटियाँ अधिक और विशेषताएँ बहुत कम हैं।

## 1.8 अभ्यास प्रश्नावली

### 1.8.1 अति लघूत्तरात्मक प्रश्न

एक वाक्य में उत्तर लिखिए–

1. रीति की तीन कौन सी काव्यधाराएं हैं?
2. रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि कौन हैं?
3. उत्तर मध्यकाल नामकरण का औचित्य लिखिए।
4. रीतिकालीन कवियों ने नारी को किस रूप में देखा?
5. रीतिकालीन काव्य की प्रमुख भाषा कौन सी थी?

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University), Ladnun

स्वयं अध्ययन के प्रश्न–

1. रीतिबद्ध, रीतिमुक्त तथा रीतिसिद्ध के तीन धाराएं रीति की है।
2. केशव, चिन्तामणि रीतिबद्ध काव्यधारा के प्रमुख कवि हैं।
3. मध्यकाल के दो हिस्से है–पूर्व और उत्तर। पूर्वकाल भक्ति प्रधान है तो उत्तरकाल श्रृंगार। ऐसा अलगाने का काम उपरोक्त शब्द करना है। इसलिए उचित है।
4. रीतिकालीन कवियों ने नारी को विलास की वस्तु के रूप में देखा।
5. रीतिकालीन काव्य की प्रमुख भाषा ब्रज रही है।

उत्तर (बोध प्रश्न)–

1. (ग) 2. (ख) 3. (क)

अतिरिक्त अध्ययन–

1. डॉ. नगेन्द्र –हिन्दी साहित्य का इतिहास
2. डॉ. लक्ष्मीलाल वैसागी–हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास
3. डॉ. शिवकुमार शर्मा–हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां

Jain Vishva Bharati Institute (Deemed University) Ladnun